
इकाई 2 भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप

संरचना

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 भूमि उपयोग का विवरण
 - 2.2.1 प्रयोग के प्रकार के अनुसार भूमि का वर्गीकरण
 - 2.2.2 भारत में भूमि उपयोग प्रतिरूप में प्रवृत्तियाँ
- 2.3 मृदाएं और उनकी परिवर्तनशीलता
 - 2.3.1 मृदा के प्रकार
 - 2.3.2 मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक
- 2.4 भारत में फसल प्रतिरूप
 - 2.4.1 फसल प्रतिरूप के प्रकार
 - 2.4.2 फसल प्रतिरूप भिन्न क्यों होते हैं ?
 - 2.4.3 फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक
 - 2.4.4 फसल प्रतिरूप में उभरती हुई प्रवृत्तियाँ
 - 2.4.5 फसल प्रतिरूप में वर्तमान प्रवृत्तियों के दूरगामी प्रभाव
- 2.5 चुनिंदा फसल उत्पादन पर विश्व में भारत की स्थिति
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- स्पष्ट कर सकेंगे, भूमि उपयोग में प्रवृत्तियों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण क्यों है;
- भारत में भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे;
- फसल का सकल/निवल क्षेत्रफल और फसल घनता के बीच अंतर कर सकेंगे;
- देश में फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के सहायक कारकों की चर्चा कर सकेंगे; और
- भारत के फसल प्रतिरूप में प्रवृत्तियों के दीर्घकालिक प्रभावों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

देश में भूमि की उपलब्धता उसकी भौगोलिक सीमाओं द्वारा सीमित रहती है। प्रतिस्पर्धी सेक्टरों (जैसे उद्योग, नगर विकास) की भूमि की आवश्यकताओं को पूरा करना भी जरूरी है।

यह कार्य बहुधा कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि कम करके किया जाता है। इस प्रकार खेती के लिए उपलब्ध भूमि का विस्तार करने की गुंजाइश बहुत कम होती है। दूसरी ओर, खाद्यान्नों की आवश्यकता जनसंख्या वृद्धि, बदलती हुई रुचियों और उन्नत आय स्तरों के कारण तथा भूमंडलीय आर्थिक परिदृश्य को नियंत्रित करने वाले कारकों के कारण निरंतर बढ़ रही है। यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि देश के अंदर कृषि उत्पादों को पैदा करना वैश्वीकरण के युग में इतना महत्वपूर्ण नहीं है, किंतु भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अपनी आजीविका के लिए निर्वाही कृषि पर निर्भर रहता है, वहां नीतिगत उपायों (जैसे ऋण आपूर्ति, विस्तार सेवाओं) द्वारा कृषि उत्पादों की सहायता करना आवश्यक है। कृषि कार्यों की वाणिज्यिक व्यावहारिकता ने वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्त्व धारण कर लिया किया है। इसलिए बहुत से कारणों से सामान्य भूमि उपयोग प्रतिरूप को और विशेष रूप से फसल उत्पादन के प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले निहित कारणों के अध्ययन को महत्त्व दिया जाता है। इस इकाई में भारत के संदर्भ में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप, दो विषयों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

2.2 भूमि उपयोग का विवरण

यह सत्य है कि कृषि भूमि के विभिन्न हिस्से खेती के लिए प्रभावी ढंग से प्रयुक्त नहीं हो सकते। यह तब स्पष्ट होगा जब हम वैकल्पिक प्रयोग पर विचार करेंगे कि कौन सी भूमि गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। इसलिए वस्तुतः खेती के लिए उपलब्ध वास्तविक भूमि (फसल का सकल क्षेत्रफल कहा जाता है) सदा सीमित होती है। अतः सबसे पहले हम भूमि के प्रयोग के प्रकार के आधार पर उसके वर्गीकरण से परिचित होंगे। बाद में हम भारत में भूमि के वितरण की रचना पर उसके “प्रयोग के प्रकार” पर इस फोकस के साथ विचार करेंगे कि कालांतर में प्रयोग के उसके प्रतिरूप में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं। इसके लिए हम तुलना के लिए दो अवधियां लेंगे : स्वतंत्रता के समय के निकट (1950) और नवीनतम वर्ष (1980) जिसके आंकड़े हमें उपलब्ध हैं। हम देखेंगे कि खेती के अधीन कुल क्षेत्रफल (गैर-कृषि कार्यों के लिए भूमि प्रयोग के बावजूद) इस दौरान वास्तव में बढ़ा है। यह कैसे संभव है? इस उपलब्धि के लिए किसका योगदान रहा है ? ये पहलू हैं जिन पर हम इस भाग में ज्ञान कर सकेंगे।

2.2.1 प्रयोग के प्रकार के अनुसार भूमि का वर्गीकरण

कुल भूमि क्षेत्रफल को, मोटेतौर पर, “प्रयोग के प्रकार” के अनुसार इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है (i) कृष्यभूमि (अर्थात् निवल बोआई क्षेत्रफल), (ii) पड़ती भूमि (जोताई किया गया क्षेत्रफल, परन्तु बोआई के बिना छोड़ा गया) (iii) गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल (vi) बंजर और अकृष्य भूमि, (v) स्थायी चारागाह और अन्य चराई भूमि, (vi) विविध वृक्ष और फसलों के अधीन क्षेत्रफल (निवर्द्ध बोआई क्षेत्रफल) और (vii) ‘वन’ के अधीन क्षेत्रफल और (viii) “कृषि योग्य बंजर” के अधीन क्षेत्रफल। गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल का उदाहरण उद्योगों के लिए प्रयुक्त भूमि है। वन और स्थायी चारागाह/चराई के अधीन भूमि पशुओं और सृष्टि में अन्य जीवों की आवश्यकता के अनुसार पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए भूमि के प्रयोग के व्यापक प्रारूप से यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पाद की वृद्धि दर केवल बेहतर रीति और प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार कृषि की बेहतर और नई रीतियां सामान्य तथा खाद्य अभाव और विशेष रूप से गरीब किसानों की समस्या दूर करने की दृष्टि से आवश्यक हैं।

भारत जैसी उन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में भूमि उपयोग से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं हैं जिनकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है। सबसे पहली समस्या खंडित जोतों की बहुत अधिक संख्या है। यद्यपि कृषि अभी भी रोजगार आय का प्रमुख स्रोत है, किंतु ऐसी छोटी जोतों पर ही परिवार निर्भर है ऐसे मामलों में खेती के नए तरीकों के क्रियान्वयन की गुंजाइश सीमित है। बहुत से कारक जैसे पूँजी का अभाव/दबाव, निम्न साक्षरता स्तर, आदि नई रीतियों को अपनाने में बड़ी बाधाएं हैं। इसके साथ ही भूमि के दुरुपयोग, और पर्यावरण पर इसके प्रभाव की समस्याएं हैं। दूसरा, औद्योगिकीकरण के लिए भूमि उपलब्ध कराने पर विकासनीति का सदा मुख्य आग्रह रहता है। इसका कारण विश्व भर में विकास के साथ-साथ विकास कृषि पर निर्भरता में कमी और उद्योग के पक्ष में की प्रवृत्ति संरचनात्मक परिवर्तन है। यह प्रवृत्ति, उद्योग द्वारा भूमि पर प्रतिस्पर्धी दावों के साथ-साथ बाधित आजीविका, आबंटन और पर्यावरण चिंताओं से निपटने की नीति का भी संकेत देती है। हाल ही के वर्षों में पुनर्वास और पुनर्स्थापना (R&R) की नीति के अंतर्गत कई उपाय हुए हैं जिनके अनुसार अधिगृहीत भूमि के लिए वित्तीय क्षतिपूर्ति के अलावा, नौकरी के आश्वासन की गारंटी, विधायी प्रावधानों द्वारा दी गई है। वनरोपण उपायों जैसे कार्यों से वन भूमि का भाग बढ़ाने और पर्यावरण संबंधी समस्या दूर करने का लक्ष्य रखा गया है। ये सरकार की नीति के मुख्य आग्रह हैं।

2.2.2 भारत में भूमि उपयोग प्रतिरूप में प्रवृत्तियां

तालिका 2.1 में 1950 से 2008 तक की अवधि में भूमि उपयोग में प्रतिरूप में प्रवृत्तियां प्रस्तुत की गई हैं। तालिका के आंकड़ों के आधार पर भूमि उपयोग की ये मुख्य विशेषताएं हैं :

- सकल फसली क्षेत्रफल 1950–2008 की अवधि में (1950 में 131.89 mha से 2008 में 195.83 mha) 63.94 मिलियन हेक्टर (mha) बढ़ा है। इसके अलावा कुल भूमि क्षेत्रफल का लगभग 70 प्रतिशत (1950 में 56 प्रतिशत की तुलना में 2008 में 68.9 प्रतिशत) में निवल फसल और वन क्षेत्र है।
- निवल बोआई क्षेत्रफल (अर्थात् खेती के लिए वस्तुतः प्रयुक्त भूमि) 1950–2008 की अवधि में भूमि उपयोग पर कुल सूचित क्षेत्रफल 22.1 mha (41.8 से 46.1 प्रतिशत) की वृद्धि हुई है।
- गैर-कृषि उपयोग के अधीन क्षेत्रफल, जिसमें मुख्यतया उद्योगों और कस्बों/शहरों के विकास के लिए प्रयुक्त भूमि शामिल है, 1950 में 3.3 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 8.4 प्रतिशत हुई है। यह देश में बढ़ता हुआ शहरीकरण और औद्योगिकीकरण का संकेत है।

तालिका 2.1 : भूमि उपयोग प्रतिरूप (mha में)

भूमि उपयोग
और फसल
प्रतिरूप

प्रकार/उपयोग के अनुसार	1950		2008	
	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
क) कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	328.73		328.73	
1. निवल बोई गई फसली क्षेत्र	118.75	41.8	140.86	46.1
2. पड़ती भूमि	28.12	9.9	25.15	8.23
3. गैर-कृषि के अधीन क्षेत्रफल	9.36	3.3	25.54	8.4
4. बंजर भूमि, खेती के योग्य नहीं	38.16	13.4	17.3	5.7
5. स्थायी चारागाह/चराई भूमि	6.68	2.3	10.4	3.4
6. विविध वृक्षों/फसलों/उपवनों के अधीन भूमि	19.8	6.96	3.3	1.1
7. वन भूमि	40.5	14.2	69.7	22.8
8. अकृष्य भूमि का क्षेत्रफल	23.0	8.1	13.1	4.3
ख) भूमि उपयोग के लिए रिपोर्टिंग क्षेत्रफल	284.37	100.00	305.35	100.00
ग) फसल का सकल क्षेत्रफल	131.89		195.83	
फसल सघनता ('ग' का 'क' (1) से प्रतिशत)	110.1		139	

नोट : कालम 3 और 4 में दिखाए गए प्रतिशत, कुल भूमि उपयोग पर सूचित किए गए कुल क्षेत्रफल के हैं। जो (1) से (8) में दर्शाए गए आंकड़ों का योग है।

स्रोत : पर्यावरण और वन मंत्रालय (MoFE) 2010

- बंजर/अकृष्य भूमि का अनुपात घटा है। यह 1950 में 13.5 प्रतिशत से घटकर 2008 में 5.7 प्रतिशत रह गया। यह अकृष्य भूमि विकास के क्षेत्र में की गई प्राप्ति का संकेत है।
- स्थायी चारागाह/चराई भूमि का क्षेत्रफल 1950-2008 की अवधि में 2.3 प्रतिशत से बढ़कर 3.4 प्रतिशत हुआ है।
- वन क्षेत्र भी 1950-2008 की अवधि में 14.2 प्रतिशत से बढ़कर 22.8 प्रतिशत हुआ है।
- कृष्य बंजर भूमि का क्षेत्रफल 1950-2008 की अवधि में 8.1 प्रतिशत से घटकर 4.3 प्रतिशत रह गया है।

भूमि उपयोग प्रतिरूप में सुधार का वास्तविक प्रभाव 'फसल सघनता' द्वारा निर्दिष्ट किया गया। सरल शब्दों में फसल सघनता उस संख्या को निर्दिष्ट करता है जितनी बाद वर्ष में फसल उगाने के लिए खेत का प्रयोग किया जाता है। यह निवल फसली क्षेत्रफल से सकल फसली क्षेत्रफल के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। 1950-2008 के अवधि में 110

प्रतिशत से बढ़कर 139 प्रतिशत हुआ है। स्पष्टतया जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट होता है, यह उपलब्धि बंजर/अकृष्य भूमि के और खेती योग्य भूमि के अनुपात में कमी करने से संभव हुआ है। उन दोनों में तेजी से कमी हुई है (अर्थात् उन्हें सुधारा गया है)। यह भूमि के अधिक दक्ष ढंग से प्रयोग करने का सूचक है। यह ध्यान रखना भी महत्वपूर्ण है कि इसके साथ-साथ वन और स्थायी चारागाह/चराई की भूमि के अधीन क्षेत्रफल में अत्यधिक वृद्धि भी प्राप्त हुई है। ये दोनों ही वृहद् स्तर पर पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

2.3 मृदाएं और उनकी परिवर्तनशीलता

मृदा की किस्म और गुणवत्ता फसलों की उस किस्म को अत्यधिक प्रभावित करती है जो किसी क्षेत्र में उगाए जा सकते हैं। ये पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक आदान हैं, किंतु सभी जगह एक जैसी गुणसंपन्न मृदा नहीं मिलती। मृदा की विभिन्न किस्में अपनी विशिष्ट भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं द्वारा विभिन्न फसलों को अलग-अलग तरीके से लाभ पहुंचाती हैं। उदाहरण के लिए, "जलोढ़ मृदा" में भरपूर पोटाशियम होता है और यह धान, गन्ना और केला जैसी फसलों के लिए बहुत उपयुक्त है। इसी प्रकार लाल मृदा में अत्यधिक लौह मात्रा होती है और यह चनों की भिन्न-भिन्न किस्मों (जैसे लाल, बंगाली, हरे), मूंगफली और एरंडी बीज उगाने के लिए बहुत उपयुक्त है। अधिक पैदावार और अच्छी उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जब फसल के लिए सही किस्म की मृदा प्रयुक्त की गई हो। क्षेत्र में उपलब्ध मृदा की गुणवत्ता का परीक्षण मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जा सकता है। उन क्षेत्रों के लिए, जिनमें उपयुक्त मृदा उपलब्ध नहीं है, उर्वरक के रूप में उसे उपजाऊ बनाने के लिए पोषक तत्व जोड़े जा सकते हैं। ऐसे क्षेत्रों में मृदा का वैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी होता है। एक ही फसल को बार-बार लगाने से मृदा की उर्वरता क्षीण भी हो जाती है। प्राकृतिक कारकों, जैसे वायु और पानी से मृदा का अपादान भी हो सकता है। इसलिए मृदा की गहराई/गुणवत्ता प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग होती है। इस अनुभाग में हम संक्षेप में भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विद्यमान मृदा की किस्मों और उसके क्षारण में सहायक कारकों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

2.3.1 मृदा के प्रकार

मृदा का वर्गीकरण क्षेत्र और उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करता है। क्षेत्रीय और प्राकृतिक कारकों के योगदान (जैसे पर्वतीय क्षेत्र, मरु भूमि, समुद्रतट के समीप की मृदा) पर निर्भर करते हुए मृदा का रंग और उसकी उर्वरता के स्तर अलग-अलग होते हैं। मृदा की कुछ किस्में उनके रंग (जैसे लाल मृदा, काली मृदा आदि) से पहचानी जा सकती हैं। कुछ अन्य (जैसे लैटेराइट, जलोढ़ आदि) उनकी रासायनिक/भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर पहचानी जाती हैं। देश में मृदा की किस्मों और उनके क्षेत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है;

- i) **लाल मृदा** : यह वह मृदा है जिसके रंग में विभिन्न लौह आक्साइड की उपस्थिति के कारण लाली होती है। इस किस्म की मृदा में जैव पदार्थ कम होते हैं जो मृदा की उर्वरता विशेषता बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। तमिलनाडु में फसल के क्षेत्रफल का लगभग दो तिहाई भाग इस किस्म की मृदा है। दक्षिण भारत के अन्य भागों, (जैसे कर्नाटक, गोवा, दमन और द्वीप, आंध्र प्रदेश) दक्षिण पूर्वी महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में भी लाल मृदा बहुतायत में है।

- ii) **काली मृदा** : यह वह मृदा है जो दक्षिण पठार में पाई जाती है। यह गहरी भूरी से काले भूरे रंग की हो सकती है। इस प्रकार की मृदा जैव पदार्थ में समृद्ध होती है और कपास की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। यह पोटाशियम, और मैग्नेशियम जैसे उपयोगी रासायनों से समृद्ध है। कपास, तंबाकू, मिर्च, तिलहन, ज्वार, रागी और मकई जैसे फसलें इस किस्म की मृदा में अच्छी उगती हैं। यह महाराष्ट्र के बड़े भागों और मध्य प्रदेश के भागों, गुजरात और तमिलनाडु में पाई जाती है। निचले स्थानों की अपेक्षा की उच्च भूमि में पायी गयी काली मृदा अपेक्षाकृत कम उत्पादनकारी है।
- iii) **भूरी मृदा** : यह तीसरी किस्म की मृदा है जो उसके रंग से पहचानी जाती है, पृष्ठीय मृदा भूरे रंग की होती है। यह देश के सबसे अधिक भागों में पाई गई सामान्य मृदा है और जैवपदार्थों से सामान्यतः समृद्ध होती है।
- iv) **लेटेराइट मृदा** : लेटेराइट मृदा कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश के पहाड़ों, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु के पूर्वी घाटों में पायी जाती है। यह कम ऊंचाइयों में जैवपदार्थ से समृद्ध है और धान की पैदावार के लिए उपयुक्त है। अधिक ऊंचाइयों में यह चाय, सिन्कोना, काफी और रबड़ उगाने के लिए उपयुक्त है। यह मृदा उन क्षेत्रों में विद्यमान है जहां विरामी आर्द्र जलवायु होती है।
- v) **जलोढ़ मृदा** : यह भारत का विशालतम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण मृदा समूह है और कृषि में इस मृदा का अंश सबसे अधिक है। उत्तर और पूर्व (अर्थात् उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम के क्षेत्रों) में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा और पश्चिम/दक्षिण (अर्थात् गुजरात, तमिलनाडु, केरल) के डेल्टा/तटीय क्षेत्र द्वारा निर्मित ये मृदा चूने में समृद्ध है परन्तु पर्याप्त लवणीय और क्षारीय भी है।
- vi) **मरुभूमि** : यह बलुई मिट्टी है, इसमें जैव पदार्थ कम है। वे पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा और पंजाब में पाई जाती है। सिन्धु नदी समूह और अरावली पर्वत श्रृंखला द्वारा प्रभावित यह मृदा भी क्षारीय से लवणीय होती है। बहुत से जल विलेय खनिजों के बावजूद इसमें पोषक तत्व कम होते हैं। फिर भी जहां बहुत अधिक वर्षा होती है ये मृदा क्षेत्रों में नारियल, काजू और कैंजुआराइना उगाने के लिए उपयुक्त है।
- vii) **तराई मृदा** : तराई मृदा हिमालय क्षेत्र की पहाड़ियों पाया जाती है। यह क्षेत्र जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल राज्यों में फैला है। यह निम्न हिमालयली क्षेत्र से सामग्रियों के नीचे की ओर संचनन द्वारा निर्मित हुई है।
- viii) **लवणीय और क्षारीय मृदा** : इनमें विलेय नमक की बहुत मात्रा होती है, भारत में लगभग 7 मिलियन हेक्टर भूमि लवणीय है, जो खेती के लिए अनुयुक्त है।

2.3.2 मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक

वर्षा, वायु, पशुओं की अतिचराई, निर्माण जैसे मानवीय कार्यों द्वारा मृदा का अपरदन होता है। भारत में जल द्वारा अपरदन की समस्या सबसे अधिक गंभीर है, विशेषकर पूर्वी भागों में, जहाँ वर्षा की ऋतुओं के दौरान आप्लावन की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। जल द्वारा मृदा अपरदन का अनुमान प्रतिवर्ष लगभग 5334 मिलियन टन लगाया गया है। इसमें से लगभग 30 प्रतिवर्ष स्थायी रूप से समुद्र में चला जाता है। जल के बाद मृदा अपरदन के लिए प्रमुख दोषी कारक वायु है। यह शुष्क राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और पंजाब के शुष्क क्षेत्रों (अर्थात् शुष्क जहां वर्षा नहीं होती है) गंभीर समस्या है। वायु द्वारा अपरदन उन तटीय क्षेत्रों

में भी व्यापक रूप से होता है जहां बलुई मृदा अधिक है। इन प्राकृतिक कारकों के अलावा, मानव प्रेरित कारक जैसे प्राकृतिक वानस्पतिक आवरण का अत्यधिक विदोहन (सीमांत क्षेत्रों में कृषि के विस्तार और अत्यधिक चराई द्वारा) भी वायु द्वारा मृदा के अधिक अपरदन के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं।

मृदा अपरदन और निम्नीकरण का एक अन्य प्रमुख कारण **जलाक्रांति** है। वर्षा ऋतु (प्राकृतिक कारक) के दौरान बाढ़ और सिंचित क्षेत्रों में जल के अत्यधिक प्रयोग तथा नहर रिसाव (मानव निर्मित कारक) के कारण भारत में कृष्य भूमि के बहुत बड़े भाग में जलाक्रांति की समस्या बनी रहती है। फसल वृद्धि में बाधा डालने के अलावा जलाक्रांति से मृदा उत्पादकता घटाने/निम्नीकरण करने की संभावना होती है। भारत में जलाक्रांति के प्रतिकूल प्रभाव का अनुमान लगभग 8 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर बताया गया है। मृदा गुणवत्ता ह्रास का एक अन्य कारक (जो मृदा गुणवत्ता के अपरदन का एक रूप ही है) **लवणीकरण** है। जमीन के स्तर से बहुत नीचे गहराई से पानी निकालकर नहरी सिंचाई के बड़े हुए प्रयोग के कारण भूमिगत जल स्तर और मृदा के ऊपरी स्तर के बीच फासला बढ़ गया है। इसे भौमजल स्तर का गिरना भी कहा जाता है। मृदा की ऊपरी स्तर से जल का वाष्पीकरण और गिरता हुआ जल स्तर "मृदा लवणीकरण" उत्पन्न करता है। आगे इस प्रक्रिया से "क्षारीकरण" नाम की रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिससे मृदा की गुणवत्ता अत्यधिक अपरदित हो जाती है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी के अंदर की गहराई से अत्यधिक पानी खींचने से प्राकृतिक कारकों को बाधित करने से क्षारीयकरण/लवणीकरण द्वारा मृदा की गुणवत्ता घटने की संभावना होती है। यह पारिस्थितिक संतुलन बिगाड़ने की मानव निर्मित प्रक्रिया भी है जिसके लिए भारत में बहुत से सामाजिक, राजनीतिक कारकों ने योगदान किया है।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

- 1) भूमि के भिन्न-भिन्न उपयोगों का उल्लेख कीजिए जिनमें कुल भूक्षेत्र वर्गीकृत किया जाता है।

.....

- 2) क्या भारत में भूमि उपयोग पर उपलब्ध प्रवृत्तियाँ फसल के लिए प्रयुक्त कुल भूमि क्षेत्रफल में ह्रास दिखाती हैं? क्या आप अकृष्य भूमि विकास में प्रगति का कोई संकेत देखते हैं ?

.....

- 3) (क) चाय, काफी और रबर तथा (ख) नारियल तथा काजू की पैदावार के लिए किस किस की मृदा अधिक उपयुक्त है ? किस/किन राज्य/राज्यों में इस किस की मृदा पाई जाती है ? क्या लवणीय/ क्षारीय मृदा फसल उगाई के लिए उच्छी है ?

.....

- 4) उन चार कारकों का उल्लेख कीजिए, जो मृदा अपरदन के लिए उत्तरदायी होते हैं।
उनमें से मानवनिर्मित दो कारक कौन से हैं ?

.....

.....

.....

.....

2.4 भारत में फसल प्रतिरूप

फसल प्रतिरूप के बहुत आयाम हैं। हम यहाँ पर उसके दो मुख्य आयामों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे। इसे क्षेत्र/खेत में उगाई गई फसलों की संख्या के अनुसार देखा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य से इसका संबंध अपनाई गई फसल प्रणाली से है। (अर्थात् एक फसल, बहुफसल आदि)। हम उपभाग 2.4.1 में इस पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे। इसके एक अन्य संक्षिप्त विवरण में उगाई गई फसलों के प्रकार बताए गए हैं (अर्थात् चावल आधारित फसल प्रतिरूप मकई आधारित फसल प्रतिरूप आदि)। इसे भारत में आम प्रचलित फसल प्रतिरूप (मानसून के बाद की फसल) खरीफ फसल प्रतिरूप (मानसूनी फसल) के रूप में दो फसल प्रतिरूपों से जोड़ा गया है। इसके अधीन क्षेत्र के बोआई क्षेत्रफल के अधिकतम प्रतिशत में जो फसल पैदा की जाती है उसी के आधार पर फसल के प्रतिरूप का नाम रखा जाता है। अन्य बोई गई फसलों को स्थानापन्न फसलों के रूप में माना जाता है। इस आधार पर स्थानापन्न के अधीन रबी फसल प्रतिरूप को गेहूँ/चना आधारित और ज्वार आधारित फसल प्रतिरूप में विभाजित किया जाता है। दूसरी ओर खरीफ फसल पैटर्न में उगाई गई/बोई गई आधार फसलें बहुत होती हैं, जैसे चावल आधारित, धान आधारित, मकई आधारित, ज्वार आधारित, बाजरा आधारित, मूंगफली आधारित, कपास आधारित आदि।

2.4.1 फसल प्रतिरूप के प्रकार

एक फसल और बहुफसल : यदि वर्ष दर वर्ष भूमि के टुकड़े पर एक ही फसल उगाई जाती है इसे **एक फसल** प्रणाली कहा जाता है। ऐसी प्रथा या तो जलवायु की अत्यंत उपयुक्तता के कारण अपनाई जाती है या किसी की सामाजिक, आर्थिक दशा के कारण। यह फसल के उस खास प्रकार में उगाने में किसान की विशेषज्ञता के कारण भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, नहर सिंचित क्षेत्रों में जलाक्रांति दशाओं में केवल धान बोया जा सकता है, क्योंकि ऐसी दशाओं कोई अन्य फसल बोना संभव नहीं है।

एक कलेंडर वर्ष में उसी भूमि के टुकड़े पर एक से अधिक फसल उगाने को बहु फसल प्रणाली कहा जाता है। इसलिए बहु फसल का अभिप्राय समय पर फसल की सघनता और स्थान का विस्तार है। अर्थात्, एक समय में एक फसल और किसी भी निर्धारित समय में उसी भूमि पर एक से अधिक फसलें। फसल प्रतिरूप की तीन किस्म, अर्थात्, अंतरा फसल मिश्रित फसल और अनुक्रम फसल, भी व्यवहार में लाई गई बहु फसल प्रणाली के ही अंतर्भेद हैं।

अंतरासस्यन का अर्थ निश्चित पंक्ति पद्धति से भूमि के एक ही खंड पर एक साथ एक से अधिक फसल उगाना है। इस रीति का अनुसरण कुछ स्पष्ट अनुपात जैसे 5 : 1 में किया जा सकता है जिसमें खास फसल प्रत्येक पांच पंक्तियों के साथ भिन्न प्रकार की फसल की एक पंक्ति होगी। यह प्रणाली स्थान के वितान पर अधिक फसल घनता दे सकती है। प्रारंभ में अंतरासस्यन प्रणाली फसल विफलता के बीमे के रूप प्रयोग की गई थी। अभी हाल ही में

इसका उद्देश्य बदल गया है, अब उत्पादन में स्थायित्व के अलावा अधिक उपज प्राप्त करना भी इसका उद्देश्य हो गया है।

अंतरासस्यन की सफलता के लिए कुछ शर्तों का पालन करना आवश्यक है। ये हैं : (i) भिन्न-भिन्न बोई गई फसलों में प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा न्यूनतम होनी चाहिए; (ii) घटक फसलों की पोषण तत्त्वों की अधिकतम भाग का समय परस्परव्यापी नहीं होना चाहिए, और (iv) घटक फसलों की परिपक्वता में अंतर कम से कम 30 दिन का होना चाहिए।

मिश्र सस्यन (मिश्रित खेती) : मिश्र सस्यन का संबंध किसी निश्चित पैटर्न के बिना दो या दो से अधिक फसलों साथ-साथ उगाना है। यह रीति सबसे अधिक सामान्यतः शुष्क भू-क्षेत्रों में अपनाया जाता है। इस प्रणाली में भिन्न-भिन्न फसलों के बीजों को कुछ मात्रा में मिला कर बोया जाता है। उद्देश्य धान्य, दलहन और सब्जियों के लिए परिवार की आवश्यकता पूरी करना है।

अनुक्रम सस्यन : अनुक्रम सस्यन का संबंध फसल वर्ष में भूमि के उसी खंड पर अनुक्रम में एक से अधिक फसल उगाने से है, इस प्रणाली को फसलों के लिए दुहरा, तिहरा या चौहरा पैटर्न कहा जा सकता है, इसमें क्रमशः दो, तीन और चार फसलें शामिल होती हैं।

(अनुपद)/पेड़ी फसल : फसल की वह प्रणाली जिसमें पिछली फसल के उत्पाद की कटाई से पहले ही अगली फसल बोयी जाती है। पेड़ी (रतून) सस्यन का संबंध पिछली काटी हुई फसल की जड़ों या डंठलों से पुनर्जनन से फसल उगाने से है।

समाकलित कृषि प्रणाली : इसका संबंध भिन्न-भिन्न प्रकार के फसल पैटर्न अपनाते हुए पशुपालन के संबद्ध क्षेत्रों जैसे डेयरी, कुक्कट पालन, मत्स्यपालन, मधुमक्खी पालन आदि करने से है। सौहार्दपूर्ण तरीके का पालन करने पर बल दिया जाता है ताकि मृदा और पर्यावरण के कम से कम क्षति हो ध्यान रखते हुए संसाधनों के कुछ उपयोग से अधिकतम लाभ हो।

2.4.2 फसल प्रतिरूप भिन्न क्यों होते हैं ?

क्षेत्रों में फसल पैटर्न भिन्न क्यों होते हैं ? इसका बुनियादी कारण यही है कि मौसम में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वर्षा की औसत मात्रा बहुत अधिक भिन्न होती है। देश में कृष्य क्षेत्रफल को मोटेतौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (i) 1150 मिलिमीटर से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र; (ii) 750–1250 मिमि. के बीच वर्षा वाले क्षेत्र; और (iii) 750 मिमी. से कम वर्षा पाने वाले क्षेत्र। असम, केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के अधिकांश क्षेत्र पहले समूह में आते हैं। इन क्षेत्रों की बुनियादी समस्या सीमित सिंचाई और घटिया जल निकास है। इन क्षेत्रों में उगाई गई मुख्य फसल चावल है। तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश दूसरी श्रेणी में आते हैं। इन क्षेत्रों में लघु और बड़ी सिंचाई सुविधाएं स्थापित करने की पर्याप्त संभावना है। तीसरी श्रेणी के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में, अपेक्षाकृत कम वर्षा के कारण फसल की सघनता सुधारने की कम संभावना होती है, इनमें आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान के भाग शामिल हैं। किसी क्षेत्र में वर्षा में विविधता और सिंचाई सुविधाओं के कारक के अलावा अन्य कारण जो फसल पैटर्न में अंतर के लिए योगदान करते हैं, निम्नलिखित हैं:

- परम्परागत सामाजिक प्रथाएं और दैनिक आहार।
- स्थानीय पारिस्थितिकी/पर्यावरण के अनुकूल साध्य रोग/कीट नियंत्रण प्रबंधन से फसल का बचाव की संभावना;

- फसलें, जो सर्वाधिक लाभकारी या उच्च उपज देती हैं जैसे वाणिज्यिक व्यावहारिता का विचार; और
- ऐसी फसलों का संयोजन जो स्थायित्व और जोखिम सुरक्षा देते हुए लाभ अधिकतमीकरण और लागत न्यूनतमीकरण सुनिश्चित करती हैं।

2.4.3 फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न कारक, जैसे किसानों की सामाजिक आर्थिक दशाएं, सांस्कृतिक कारक, जलवायु दशाएं आदि क्षेत्र में फसल प्रतिरूप निर्धारित या प्रभावित करते हैं। इस संबंध में मुख्य कारक निम्नलिखित हो सकते हैं।

- i) **भूमि जोत का आकार** : इकाई की प्रस्तावना में उल्लिखित, भारत में छोटे और सीमांत किसान कृषि समुदाय का बहुत बड़ा भाग हैं। इस कारण से एक फसल प्रतिरूप बहुत अधिक प्रचलित है क्योंकि यह किसान के परिवार खाद्य आवश्यकताएं पूरी करता है। स्थिति ऐसी होती है कि वाणिज्यिक फसल की बहुत कम गुंजाइश रहती है।
- ii) **साक्षरता** : फसल के लिए बेहतर तरीके अपनाने के लिए शिक्षा का कुछ स्तर प्राप्त करना आवश्यक है। यह भारत के संदर्भ में छोटे और सीमांत किसान समुदाय में अत्यधिक निरक्षरता के कारण है जो बड़ी संख्या में हैं। प्रौद्योगिकीय आदानों की आवश्यकता वाले मिश्र फसल प्रतिरूप में अंतर्निहित वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग में यह कारक (अर्थात् निरक्षरता) बड़ी बाधा है।
- iii) **वित्तीय आवश्यकता स्थायित्व** : बड़ी संख्या में किसानों की खराब आर्थिक दशा के कारण मध्यम से उच्च पूंजी आवश्यकता वाले फसल प्रतिरूप किसानों द्वारा नहीं अपनाए जा सकते। वे कम लागत के ऐसी फसल प्रतिरूप अपनाने के लिए विवश होते हैं जो कम उत्पाद और आय देते हैं।
- iv) **रोग/कीट प्रवर्धन/नियंत्रण** : यह ऊपर उल्लिखित छोटे किसानों की वित्तीय और शैक्षिक स्थिति के कारणों को जोड़ देता है। इसके कारण किसान आधुनिक रोग/कीट नियंत्रण उपाय नहीं अपना सकते।
- v) **पारिस्थितिक उपयुक्तता** : क्षेत्र का फसल प्रतिरूप फसलों के लिए पारिस्थितिक उपयुक्तता पर अत्यधिक निर्भर करता है। स्थानीय पारिस्थितिक कारकों के अनुकूल फसल प्रतिरूप अपनाने में मृदा परीक्षण और प्रचलित दशाओं के लिए अपेक्षित आदानों के प्रयोग की आवश्यकता होगी। एक बार फिर सामाजिक/ आर्थिक हैसियत प्राकृतिक दशा के इस स्वरूप का सामना करने में बाधक कारक होता है।
- vi) **आर्द्रता उपलब्धता** : यह क्षेत्र में जलवायु संबंधी कारक अर्थात् वर्षा से जुड़ा है। इसका सामना करने के लिए आधुनिक सिंचाई सुविधाएं आवश्यक हैं। इस सभी के लिए कुछ स्तर की जानकारी और आर्थिक आधार आवश्यक हैं जो भारत में श्रेष्ठतम कृषि प्रथाएं अपनाने के लिए सहायक नहीं हैं।

ऊपर गिनाए गए विभिन्न कारक अनिवार्यतः एक दूसरे के प्रतिकूल प्रभावकारी प्रभावों से आपस में जुड़े हुए हैं। फिर भी उभरती हुई प्रवृत्तियों का बहुत बड़ा वर्ग उसी प्रकार की असमर्थता से लगातार पीड़ित होने के बावजूद इन जमीनी वास्तविकताओं में सुधार दिखाता है। अब हम अगले भाग में इन प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

2.4.4 फसल प्रतिरूप में उभरती हुई प्रवृत्तियाँ

भारत कृषि उत्पादन में विश्व का नेतृत्व करता है, समग्र कृषि उत्पादन में इसका दूसरा स्थान है। फिर भी, भारत में फसल प्रतिरूप की प्रमुखता जारी रखने की प्रवृत्तियाँ कुछ चिंताजनक हैं। ये निम्न प्रकार हो सकती हैं :

- सभी प्रकार के कृषि उत्पादन में (जैसे खाद्यान्न, धान्य, दलहन, फल और सब्जियाँ आदि) में धान्य फसलों की प्रमुखता है। चूंकि धान्य गरीब लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं बताता है इसलिए यह निर्वाही कृषि में लगे हुए गरीब लोगों की विशाल संख्या को दर्शाता है। चूंकि अधिकांश किसान "छोटे और सीमांत किसान" होते हैं, (अर्थात् जिनकी जोत 0-5 एकड़ के बीच होती है) गरीब लोगों में स्वयं अपने उपयोग के लिए कृषि कार्यों में लगे रहने की प्रवृत्ति प्रमुख होती है। यही वास्तविकता यह भी सूचित करती है कि खाद्य से भिन्न नकदी फसलों की ओर जाने, जिसके लिए अधिक मात्रा में निवेश की आवश्यकता में वे असमर्थ हैं।

यद्यपि कृषि ऋण और अनुदान की आपूर्ति में वृद्धि हुई है, फिर भी बुनियादी प्रवृत्ति अभी भी चिंताजनक बनी हुई है।

- दूसरे, कुछ समय से कृषि उत्पादकता में सुधार के बावजूद, यह अभी भी विश्वव्यापी स्तर से काफी नीचे है, अनेक अध्ययनों से प्रकट हुआ है कि भारत में माध्य कृषि उत्पाद विश्व में अधिकतम औसत उत्पाद का केवल 30-50 प्रतिशत है।
- निम्न उत्पादकता स्तर भी रोजगार और जी डी पी के अनुपात द्वारा रेखांकित किया गया है। जबकि लगभग 500 मिलियन व्यक्तियों का अनुमानित कुल श्रमिक बल का 50 प्रतिशत से अधिक कृषि में बना रहता है, कृषि उत्पादन का जी डी पी में निवल योगदान लगभग 15 प्रतिशत है। यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि कृषि पर लोगों की निर्भरता नीचे आई है। (यह स्वतंत्रता के समय लगभग 70 प्रतिशत के स्तर से घटकर अब लगभग 50 प्रतिशत है) किंतु यह अभी भी विकसित देशों में तदनुसूची स्तर से काफी ऊंची है। वहां तो श्रमिक बल का लगभग 5 प्रतिशत से भी कम अंश भारत के औसत उत्पादन स्तरों की तुलना में काफी अधिक उत्पादन करता है। प्रवृत्ति, छोटे किसानों के सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में निम्न स्तर के कारण वैज्ञानिक प्रगति का कम प्रयोग दर्शाती है।

खाद्यान्न उत्पादन से नकदी फसल, जैसे फल और सब्जियों के उत्पादन की ओर स्पष्ट परिवर्तन दिखाई दे रहा है। (आज भारत कुछ फलों, जैसे पपीता, सपोटा, केला आदि के उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है) यही नहीं, फलों के विश्व उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत भारत में ही हो रहा है। इसके बावजूद उच्च कीमत वाणिज्यिक फसलों की ओर परिवर्तन विश्वव्यापी वाणिज्यिक मानकों के अनुसार अभी भी बहुत कम है। परिणामस्वरूप विश्वव्यापी फसल उत्पादन पर और उसमें भारत के समग्र शेयर पर प्रभाव बहुत ही महत्वहीन रहता है।

- भारत की जनसंख्या गेहूं और चावल उत्पादन करने की उसकी क्षमता की तुलना में तेज गति से बढ़ रही है। यदि अन्य देशों से इन चीजों का आयात कम किया जाता है तो इस प्रवृत्ति को उलटने और सुधारने की आवश्यकता है।

2.4.5 फसल प्रतिरूप में वर्तमान प्रवृत्तियों के दूरगामी प्रभाव

वर्तमान फसल प्रतिरूप के दूरगामी प्रभाव निम्न प्रकार कहे जा सकते हैं :

उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं का अत्यधिक प्रयोग : अजैविक उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं का अत्यधिक प्रयोग से कृषि उत्पादों में विषाक्तता बहुत बढ़ जाती है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं के भारी प्रयोग से व्यापक जल और पर्यावरण संबंधी प्रदूषण भी हुआ है। इसके फलस्वरूप समुदाय में बहुत सी स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं। इसके साथ कीटों में प्रतिरक्षा क्षमता में वृद्धि हुई है और इससे प्रयुक्त कीटनाशी दवाएँ अप्रभावी हो रही हैं।

संकर और उच्च पैदावार वाली किस्में

संकर और उच्च पैदावार वाली किस्मों के अत्यधिक प्रयोग के फलस्वरूप स्थानीय किस्में लुप्त हुई हैं जो अपने पोषक स्तरों के लिए जानी जाती थीं। इससे प्राकृतिक और जैविक खेती की तकनीक अपनाने के महत्त्व पर जागरूकता बढ़ी है। परन्तु इन प्रणालियों के प्रयोग का स्तर ऊँचा उठेगा तभी ये सारी व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान दे पाएंगी। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ये ही तरीके तब भी थे और इन्होंने हरित क्रांति के लाभ प्राप्त करने में योगदान किया था। परम्परागत प्रथाओं और आधुनिक तरीकों के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है।

जल की बढ़ी मांग : यह अनुमान लगाया गया है कि कुल प्रयुक्त जल का लगभग 70 प्रतिशत पानी कृषि सेक्टर लेता है। इसके अलावा, बढ़ी हुई फसल सघनता से कृषि के लिए जल की आवश्यकता भी बढ़ी है। इससे अन्य प्रतिस्पर्धी सेक्टरों की पानी की मांग पूरी नहीं हो पा रही है। पानी के अधिक उपयोग से भौमजल का स्तर नीचे गिरा है। बढ़ी हुई सिंचाई सुविधाओं के परिणामस्वरूप बहुत से छोटी और बड़ी सिंचाई परियोजनाएं आरंभ करनी पड़ी हैं। प्रायः इन परियोजनाओं ने सामाजिक और पर्यावरण संबंधी बाधाएं उत्पन्न की हैं। यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि गैर-कृषि प्रयोजनों के लिए कृषि भूमि अधिग्रहण की जाती है। यद्यपि इस प्रवृत्ति पर स्वतः प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि, श्रमिक की खपत और कृषि की उत्पादकता स्तर की तुलना में उद्योग के इन स्तरों से नहीं की जा सकती। हां, जल संरक्षण तरीकों और रीतियों का अपनाना भी आवश्यक है।

वन क्षेत्र का अवक्षय : उच्चतर फसल सघनता एक दूरगामी आशंकित प्रभाव वन क्षेत्र का हास था (जो पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं)। फिर भी, हमने उपभाग 2.2.2 में नोट किया कि वनीकरण के उपयोग ने सामान्यतः देश में न केवल समग्र वन आवरण बनाए रखने, बल्कि सुधारने में भी योगदान किया है। फिर भी निश्चित क्षेत्रों और स्थानों में पारिस्थितिक मानकों का असंतुलन बढ़े हुए फसल उत्पादन और अन्य गैर-कृषि कार्यों के उच्चतर स्तर के कारण एक वास्तविकता बन गया है। चिंता के इस मामले का समाधान स्थानीय स्तर पर होना आवश्यक है।

संक्षेप में, दीर्घकालिक चिंता के क्षेत्रों के रूप में उपर्युक्त निर्धारित कारकों में से प्रत्येक दोधारी प्रभावशाली साधन हैं जिनके उपयोगी और हानिकर दोनों प्रभाव हैं। आज एक प्रभावी विकास चुनौती यही है कि उन साधनों के सकारात्मक प्रभावों से बचते हुए उनका लाभ कैसे उठाया जाए।

2.5 चुनिंदा फसल उत्पादन पर विश्व में भारत की स्थिति

विश्व में भारत भैंस के दूध के उत्पादन में पहले स्थान पर है। कई अन्य उत्पाद हैं जिनमें भारत का स्थान विश्व में अपने उत्पादन में पहला है (जैसे ताजे फल, धनिया, नीबू, काजू, सूखी मिर्च और कालीमिर्च, अदरक, हल्दी, जूट, गर्म मसाले, दलहन, एरंड का तेल, ज्वार, बाजरा आदि (मिलेट), कुसुम बीज, खट्टा नीबू, बकरी का दूध आदि)। हम धान (चावल) के उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर हैं। 2008 में लगभग 148 मिलियन टन समग्र उत्पादन हुआ था। अन्य वस्तुओं, जिनमें विश्व में भारत दूसरे सबसे बड़े उत्पादक के रूप में उभरा है, वे हैं गेहूं, गाय का दूध, ताजी सब्जियां, बिनौला, बैंगन, लहसुन, रेशम, इलायची, प्याज, गन्ना, सूखी सेम, हरी मटर, कद्दू, आलू, स्थलीय मछली आदि। कई उत्पादों, जिनमें भारत विश्व बाजार में तीसरे स्थान पर है, उनमें शामिल है : ज्वार, तंबाकू, नारियल, तोरियाबीज, टमाटर, मुर्गी के अंडे आदि। काफी उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में छठा है। इसलिए पिछले भागों में सामान्यतया सामने आने वाली चुनौतियों के रूप में साथ-साथ कार्य करते हुए भारतीय कृषि की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद यह जानना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि कृषि के बहुत से उत्पादों में हम भी विश्व नेताओं में हैं।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

- 1) फसल प्रतिरूप के संदर्भ में प्रतिस्थानी फसल से आधार फसल किस प्रकार भिन्न है ?

.....

.....

.....

.....

- 2) "बहु फसल" व्यवस्था के तीन प्रकार भेदों का उल्लेख कीजिए। "समाकलित कृषि प्रणाली" का क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

- 3) वर्षा के अलावा फसल प्रतिरूप में अंतर के लिए कौन से अन्य कारकों का योगदान होता है।

.....

.....

.....

.....

- 4) किन्हीं पांच कारकों का उल्लेख कीजिए जो भारत में फसल प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं ?

.....

- 5) वह कौन सा कारक है जो फसल प्रतिरूप को प्रभावित करता है और जिसका सामना आधुनिक सिंचाई सुविधाओं द्वारा किया जा सकता है।

2.6 सारांश

इस इकाई में भारत में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप दो विषयों पर चर्चा की गई है। हमने भूमि के सामान्य वर्गीकरण से प्रारंभ किया। ये आठ उपयोगों में वर्गीकृत किए गए हैं। हमने नोट किया है कि कृषि प्रयोग के लिए भूमि 1950 से 2008 तक शीर्ष स्थान पर रही है। यह प्रवृत्ति सुरक्षित वनों के अवक्षय या स्थायी चारागाह और चराई की कीमत पर नहीं रही है जो समग्र पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। वास्तव में, इन दोनों प्रयोजनों के लिए उपलब्ध भू-क्षेत्र, इस दौरान बढ़ा है। यह तथ्य हमें बताता है कि प्रारंभ किए गए अन्य उपायों का (जैसे वनीकरण, सामान्य जागरूकता अभियान आदि) देश में भूमि उपयोग प्रतिरूप पर सकारात्मक प्रभाव रहा है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के फसल प्रतिरूप प्रयोग किए जाते हैं, फिर भी समस्या के कुछ संवेदनशील क्षेत्रों, (जैसे छोटी जोत, निम्न साक्षरता स्तर, आर्थिक क्षमता बढ़ाना आदि) पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। ये सभी फसल रीति में वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग के अपेक्षाकृत निम्न स्तर के कारण हैं। कृषि में बाधा डालने वाली कई कमियों के बावजूद बहुत से कृषि उत्पादों में भारत की गणना विश्व-नेताओं में की जाती है।

2.7 शब्दावली

- फसल की सघनता** : निवल फसल क्षेत्रफल से सकल फसल क्षेत्रफल का अनुपात
- निवल बोया गया क्षेत्रफल** : निवल फसल क्षेत्रफल के भांति इसे निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है निवल बोया गया क्षेत्रफल = सकल बोया गया क्षेत्रफल (पड़ती भूमि + खेती योग्य बंजर) + K गुना (एक से अधिक बार फसल का क्षेत्रफल); जहाँ K वह संख्या है जितनी बार खेती के लिए भूमिका टुकड़ा प्रयुक्त किया गया है।
- छोटे/सीमांत किसान** : यह शब्द साधारणतया भारत के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। यह 2.5 हेक्टर (1 हैक्टेयर = 2.5 एकड़) से कम भूमि जोत वाले किसानों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। छोटा किसान उसे कहा जाता है जिसके पास 2 एकड़ से कम भूमि है

जबकि एक एकड़ से कम भूमि वाले को सीमांत किसान कहा जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने प्राथमिकता के आधार पर ऋण देने के प्रयोजन के लिए (प्राथमिकता सेक्टर में कमजोर वर्गों में) “छोटे और सीमांत किसान” उन्हें परिभाषित किया है जिनके पास 5 एकड़ से कम असिंचित भूमि या 2.5 एकड़ सिंचित भूमि और भूमिहीन श्रमिक, पट्टेदार किसान और बटाईदार, परिभाषित किया है। उन्हें अनिवार्यतः अपनी खेती के कार्यों पर रहना पड़ता है क्योंकि उनके पास अन्य उपयुक्त विकल्प नहीं होता है। गरीब होने के कारण, वे अपने उपयोग के लिए फसल पैदा करते हैं, इसलिए “जीवन निर्वाह खेती या किसान” शब्दों का प्रयोग भी इनके लिए होता है। चूंकि वे संख्या में बहुत हैं और खेती के आधुनिक नए तरीके अपनाने के लिए (साक्षरता के निम्न स्तर और आधुनिक तरीके को काम ले लाने के लिए अपेक्षित निवेश के अभाव जैसे कारणों के कारण), अपनी उत्पादकता और आय के स्तर बढ़ाने के लिए उनकी योग्यता नीति की मुख्य चुनौती है। प्रमुख रूप से पुराने कानूनों को बदलना भूमि सुधार में कहा जाता है, इस संबंध में इसकी बहुत आवश्यकता की वकालत की गई है।

लवणता/क्षारीयता : इसका संबंध लवण की उस मात्रा से है जो पानी/मृदा को खारा बनाता है। जब ऐसी मृदा गर्म सूर्य किरणों के संपर्क में आती है, परिणाम में रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिससे स्वरूप में मृदा क्षारीय हो जाती है। ऐसी मृदा खेती के कार्यों के लिए सबसे अधिक अनुपयुक्त होती है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chadha G K , S. Sen and H. R. Sharma (2004): *Land Resources , State of Indian Farmer: A Millennium Study*, Vol. 2, Academic Publishers, New Delhi.

Govt. of India (2001): Report of the Working Group on Agricultural Statistics (for the X Five Year Plan), Planning Commission, New Delhi.

(<http://planningcommission.nic.in/aboutus/committee/wrkgrp/wgagrstat.pdf>)

Rajiv Ranjan Shrivastava (2007): *Emerging Trends of Cropping Pattern in India*, DK Publishers, New Delhi.

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

1) उपभाग 2.2.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

- 2) उपभाग 2.2.2 देखिए और उत्तर दीजिए।
- 3) उपभाग 2.3.1 देखिए और उत्तर दीजिए।
- 4) उपभाग 2.3.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

- 1) भाग 2.4 देखिए और उत्तर दीजिए।
- 2) उपभाग 2.4.1 देखिए और उत्तर दीजिए।
- 3) उपभाग 2.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए।
- 4) उपभाग 2.4.3 देखिए और उत्तर दीजिए।